ओ३म्

-सर्वस्व

आयु॰ विजय मेहता

आचार्य कृष्ण

हम नहीं, वे क्या कहते हैं

श्री आचार्य कृष्णजी की लिखी 'उपनयन सर्वस्व' पुस्तक को पढ़ने का मुझे अवसर मिला। पढ़कर यही अनुभव हुआ कि 'उपनयन' के विषय में जो कुछ लिखना चाहिये था वह सब इस पुस्तक में लिख दिया गया है, सो 'उपनयन सर्वस्व' यह नाम ठीक ही रखा गया है। इस विषय में इससे अधिक उपयोगी पुस्तक अनुपलभ्य ही है। लेखन शैली में प्रतिभा के और विशदता का सुन्दर समन्वय हुआ है। पुस्तक को पढ़ते हुये मुझे लेखनी शैली में प्रतिभा के समावेश को देखकर श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार का स्मरण हो आता था। लेखन शैली की विशदता मुझें श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति का ध्यान कराती थी। इस प्रकार यह पुस्तक बड़े-से-बड़े विद्वान् और साधारण मनुष्य दोनों के लिये उपयोगी है। यह पुस्तक हिन्दी साहित्य को वास्तव में समृद्ध करने वाली है।

चूनामण्डी, पहाड़गंज, देहली　　　　हरिशरण सिद्धान्तलंकार

१-१२-६६

ओ३म्

उपहार-सर्वस्व

विवाहोपरान्त विदाई वेला में पिता का पुत्री को उपहार

समय है कि कुछ तुझको उपहार दूं मैं।
न इक बार ही बल्कि सौ बार दूं मैं।।
न दूंगा तो हो जाएगी बात हेटी।
तो ले कुछ न कुछ तुझको देता हूँ बेटी।।

—आचार्यकृष्ण

आमुख

बात पुरानी पड़ गयी है, परन्तु ऐसा लगता है कि कल की बात हो। १८ नवम्बर १९६१ को स्नेहमयी भानजी (पुत्री) प्रेम (मुनियाँ) का विवाह होना निश्चित था। सभी छोटे-बड़े अपनी-अपनी भेंट ला रहे थे। मैं सोच रहा था कि क्या ले चलूं? बस कलम उठाई और कुछ शिक्षाप्रद उपयोगी बातें लिखनी आरम्भ कीं, उसने लघु लेख का रूप धारण कर लिया। विवाहोपरान्त जब आशीर्वाद देने को कहा गया, तो वही लेख पढ़ डाला। उस समय उपस्थित लोगों ने उसे बड़ा सराहा। विशेषतः मेरे प्रिय शिष्य श्री पं० सत्यप्रिय जी वेद। शिरोमणि ने तो बहुधा उसे पुस्तक का रूप देकर छपवा देने का आग्रह किया। मैं अवसर की तलाश में था, कि कब अवसर आएगा? लो, आ ही गया। उसी प्रकार स्नेहमयी पुत्री शशि का विवाह २४ दिसम्बर १९७५ को होना निश्चित हुआ। मेरे सामने फिर वही प्रश्न कि 'क्या तुझे उपहार दूं मैं?' बस, उसी आठ वर्ष पुराने लेख की खोज आरम्भ की। सौभाग्य से वे पन्ने मिल गए। बस, उसमें ही कुछ परिवर्तन और परिवर्धन करके 'उपहार सर्वस्व' नाम दे दिया है।

वैसे तो 'सर्वस्व' शब्द सब कुछ का द्योतक है। तो क्या कोई व्यक्ति अपना सब कुछ भेंट कर सकता है? सब कुछ नहीं, तो अपनी ओर से की जाने वाली भेंट में स्नेह को एकरूपता देकर उपस्थित कर सकता है। बस, मैंने भी इस उपहार में स्नेह का

सर्वस्व उंडेल दिया है। यह 'उपहार सर्वस्व' पुस्तक ऐसी तैयार हो गयी है कि हर पिता अपनी पुत्री को आशीर्वाद के रूप में, उत्तम शिक्षा के रूप में अथवा उपहार रूप में दे सकता है।

अपने प्रिय शिष्य श्री पं० कर्मवीरजी शास्त्री विद्या-वाचस्पति को कैसे भूला सकता हूं, जिनके सतत प्रयत्न का परिणाम सर्वस्व-ग्रन्थ-माला का तृतीय कुसुम पाठकों के हाथ में है। जैसे पहले दो कुसुम अपनी सुगन्धि से पाठकों के मन, मस्तिष्क को सुवासित करते रहे हैं, वैसे ही यहतृतीय कुसुम भी अपनी सुगंधि से दिग्दिगंत को सुरभित करेगा।

—आचार्य कृष्ण

स्नेह भरित पिता ....
को ओर से स्नेहमयी सुपुत्री......
को सस्नेह
"उपहार-सर्वस्व"

स्नेह उपहार

सुते !

लोग कहते हैं यह शुभ घड़ी है,
घड़ी शुभ तो है कष्टदायक बड़ी है,
समझता है वह इसको जिस पर पड़ी है,
कि माता पिता को निहायत कड़ी है,
जुदा इस में होता है टुकड़ा जिगर का,
हटाना ही पड़ता है दीपक यह घर का।
नहीं वे सबब आंसुओं की रवानी,
ये आंसू किसी दुःख की हैं निशानी,
सुता-प्रेम बहने लगा बन के पानी
हुई पानी पानी मेरी बुद्धिमानी,
यह माना कि दिल का है अरमान निकला,
मगर धैर्य से मोह बलवान निकला।
समय है कि कुछ तुझ को उपहार दूं मैं,
कोई वस्त्र या कुछ अलङ्कार दूं मैं,
मयस्सर जो हो तो रतन हार दूं मैं,
न इक बार ही बल्कि सौ बार दूं मैं,

न दूंगा तो हो जायेगी बात हेटी,
तो ले कुछ न कुछ तुझको देता हूं बेटी!
न हीरे न मोती न अनमोल मनके,
न कलियों की माला न जूड़े सुमन के,

ऋणी क्यों हों सर्राफ के या चमन के,
नहीं अंग भूषण ये भूषण हैं मन के,
अगर यह अलंकार स्वीकार होगा,
तो तेरा भी आदर्श शृंगार होगा।

महत्वपूर्ण चरण—

वत्से ! यह बताने की आवश्यकता नहीं, कि आज तेरे जीवन-सोपान का महत्त्वपूर्ण चरण आरम्भ हुआ है। इसे इतनी दृढ़ता से रखने की अवश्यकता है, कि रखा हुआ चरण डगमगाये नहीं, बढ़ा हुआ पग लौटे नहीं। विवाह संस्कार में जो अभी-अभी तुझ से शिला पर पग रखवाया गया था वह इसी दृढ़ता का सूचक था। गार्हस्थ्य-मर्यादा पर इस दृढ़ता से अधिकार करो, कि न तो स्वयं ही उसका उल्लंघन करो, और न कोई दूसरा ही उल्लंघन करने का साहस करे।

तौल में भारी—

जिस आश्रम की ओर तुमने मोड़ लिया है, वह आश्रम महिमा में सबसे महान् है। ऋषियों द्वारा तोले जाने पर इसी आश्रम का पलड़ा शेष तीनों आश्रमों की तुलना में बराबर बैठा था[1]। मनु महाराज ने इसकी महिमा में क्या ही अच्छा कहा है, कि जैसे सब जन्तु वायु के सहारे जीते हैं, वैसे ही सब आश्रम गृहस्थ के आश्रित जीते हैं[2]। जैसे नदी-नद समुद्र में जाकर स्थित

१. आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीषिणः, एकतश्च त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकतः। महा०

२. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः। मनु० ३-७७

होते हैं, वैसे ही तीनों आश्रम गृहस्थ में जाकर स्थित होते हैं[१]। अन्य आश्रमों का भरण-पोषण करने के कारण यह ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है[२]।

पुरुष का आधा भाग—

जिस आश्रम का यशोगान अभी सुना गया है, उसके वहन करने में तुम्हारी क्या स्थिति है, यह भी जान लेना आवश्यक है। तुम्हारी स्थिति पत्नी की स्थिति होगी। पत्नी पति का आधा भाग है[३] पुरुष जब तक जाया का लाभ नहीं करता, तब तक अपूर्ण ही रहता है। आधे भाग से रहित व्यक्ति पूर्ण हो भी कैसे सकता है? नारी का जो 'अर्धं भार्या मनुष्यस्य' कहकर कीर्तिगान किया गया है, वह यथार्थ है। पुराणों में अर्धनारीश्वर की कल्पना कोरी गप्प नहीं है। वह तो पति-पत्नी के सहमिलन का चित्रण है। पति-पत्नी वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं। पति-पत्नी गृस्हथ-नदी के वह दो किनारे हैं जिनमें सन्तति जल प्रवाहित रहता हैं, जिससे राष्ट्र-क्षेत्र नित्य सिञ्चित, हरा-भरा और फला-फूला रहता है।

ताना बाना—

पति और पत्नी एक ही तन्त्र के ताने-वाने हैं। पति ताना है तो पत्नी बाना है। इसी ताने-बाने से निर्मित देह तन्त्र को पहन कर ही कोई आत्मा पुत्र संज्ञा का लाभ करती है। यह

१, यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्। तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्। मनु० ६-९०

२. यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही। मनु० ३-७८

३. अर्धो वा एष आत्मनो यज्जाया। शतपथ ५।२।१।१०

कहना कठिन है कि ताने-बाने में किसका महत्त्व अधिक है। यही कहा जा सकता है कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे के आश्रित हैं। बाना अपने को ताने में विलीन करता है, तब कहीं तन्त्र पहनने, ओढ़ने और बिछाने के काम आता है; पत्नी अपने स्वत्व को पति में विलीन कर दे, यही उसका सौभाग्य है। उसका अपने स्वत्व को पृथक् बचा कर रखना अपराध है। वह अपने अर्थ, काम और धर्म-तन्त्र को पति के अर्थ, काम, और धर्म-तन्त्र में विलीन कर दे, यही उसकी अव्यभिचारिणी स्थिति है। संभवतः एक प्रकार से, भगवान् मनु ने "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" में इसी की घोषणा की है।

मैं द्यौः, तू पृथिवी—

वेदों में स्त्री-पुरुष के सहमिलन की उपमा जिन तत्त्वों से दी गई है वह और भी अनुपम है, जो परमकवि का ही चमत्कार है। विवाह संस्कार में इसकी घोषणा स्वयमेव वर ने अभी-अभी की थी। तुझे सम्बोधित करते हुए कहा था—"द्यौरहम् पृथिवी त्वम्": मैं द्यु हूं और तू पृथिवी है। जैसे ये दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित और आबद्ध हैं, वैसे ही हम दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित और आबद्ध रहेंगे। मण्डप के नीचे बैठ कर बांधी गई दो पल्लुओं की गांठ केवल कपड़े की गांठ[1] नहीं है, वह तो दो हृदयों का ग्रन्थि-बंधन है जो सूर्य और पृथिवी के गठ-बन्धन की भांति दृढ़ रहेगा।

पुत्र चन्द्र है—

जैसे पृथिवी सूर्य को केन्द्र बनाकर उसकी परिक्रमा करती

१—जहां गांठ तहँ रस नहीं यह जानत सब कोय।
मंडए तर की गांठ में गांठ-गांठ रस होय॥ —बिहारी

है, वैसे ही पत्नी पति को केन्द्र मान कर उसी की परिक्रमा करती रहे। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से पृथिवी आलोकित रहती है, उसी प्रकार पत्नी पति के व्रत से आलोकित रहे और उसे पुत्र में संक्रान्त करे—पति सूर्य है पत्नी पृथिवी है, पुत्र चन्द्र है। जहां सूर्य चन्द्र पर सीधा प्रकाश डालता है, वहां पृथिवी के माध्यम से भी प्रकाश डालता है। जहां सीधा आया हुआ प्रकाश आग्नेय होता है, वहां पृथिवी के माध्यम से आया हुआ प्रकाश सौम्य होता है। पुत्र वह है जिसमें पिता और माता के, दोनों के, गुण संक्रान्त हों। सत्य व्यवहार ही वह गुण है जो पति-पत्नी को परस्पर आकर्षित और आवद्ध रखता है, वर द्वारा कही गई इस उक्ति में इसी का निर्देश मिलता है—'वध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयञ्च ते", मन्त्र ब्राह्मण १।३।८॥

सीप के दो पुट—

सीप के दो पुट सहयुक्त होकर ही मोती का निर्माण करते हैं। पति-पत्नी भी गृहस्थ सीप के दो पुट हैं जिनमें तनय मौक्तिक का लाभ किया जाता है। अलग हुई सीप पुट मोती नहीं वना सकती; इसलिए वह स्थिति कभी भी श्रेयस्कर नहीं जिसमें परस्पर वियुक्त होने की नौवत आये। वेद का आदेश है—"मा वियोष्ट", वियुक्त मत होवो।

दो चक्र—

रथ को गति देने के लिए **दो चक्रों** की आवश्यकता है। एक चक्र पर रथ न ठहर ही सकता है और न गति ही दे सकता है। गृहस्थ-रथ का एक चक्र यदि पति है तो दूसरा चक्र पत्नी है।[1]

१—एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः। अभार्यो नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु (भविष्य पुराण)

इसी से पत्नी की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है।

दो पंख—

जैसे पक्षी दो पंखों के आश्रित ऊँची से ऊंची उड़ान भरता है, वैसे ही गृहस्थ—रूपी पक्षी भी पति-पत्नी रूप पंखों के आश्रित स्वर्लोक तक की उड़ान भरता है। गृहस्थ पक्षी का यदि एक पक्ष पति है तो दूसरा पक्ष पत्नी है[1]।

विवाह-वेदी से पति ने अभी-अभी यह घोषणा करके अपने और तेरे हृदय की अभिन्नता की उपमा उन दो जलों से दी है जो दो भिन्न स्रोतों से लाकर एक पात्र में इकट्ठे कर दिए गये हैं। जैसे उनको पृथक् करना असंभव है, वैसे ही दो भिन्न-भिन्न कुलों से आये व्यक्तियों के हृदयों का पृथक् किया जाना असंभव है "समापोहृदयानि नौ" (१०।८५।४७।)

नीरक्षीर—

नीरक्षीरवत् एक जान होने की बात भी इसी को लक्ष्य में रखकर कही गई है। नीर अपने स्वत्व को क्षीर में विलीन करके ही क्षीर के मूल्य बिकता है। पत्नी अपने स्वत्व को पति में विलीन करके ही अपना मूल्य बढ़ा सकती है।[2]

शब्द अर्थ—

कविकुलगुरु कालिदास ने पति-पत्नी के अखण्ड सम्बन्ध की उपमा सर्वथा नये प्रकार से दी है: जैसे संज्ञा और अर्थ का अटूट सम्बन्ध है, वैसे ही पति और पत्नी का अटूट सम्बन्ध है—

१—रथी ह भूत्वा रथयान ईयते, पक्षी ह भूत्वाऽतिदिवः समेति। अथर्व ४।३४।४

२—पत्न्याः पतिद्रव्ये स्वत्वं नीरक्षीरवदेकलोलीभावापन्नं सहाधिकारिककर्मोपयोगि। व्यवहारप्रकाश पृ० ५१०

पति संज्ञा है, तो पत्नी अर्थ है।

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ" रघुवंश सर्ग १, श्लोक१ : जैसे संज्ञा और अर्थ को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता, वैसे ही पति-पत्नी को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता।

अथर्ववेद में इन्द्र से कहा गया है कि वह पति-पत्नी को चकवा-चकवी की भांति दाम्पत्य प्रेम में आवद्ध रखे[1]।

वेदों में स्त्री को **जीवन-रस का अक्षय स्रोत** कहा गया है। उसकी महिमा किस प्रकार कही जाय! अभी-अभी विवाह संस्कार में इस प्रकार के ओजस्वी स्वर सुने गये थे : "यस्यां भूत समभवत्, यस्यां विश्वमिदं जगत् तामद्य गाथां गास्यामि स्त्रीणां यदुत्तमं यशः। पार० गृह्य० १।७।२॥

यह सत्य ही है कि **भूत और भविष्यत्** जगत् के जन्म का कारण स्त्री है। उसके उत्तम यश की आराधना भारतीय संस्कृति में होनी ही चाहिए। हमारे उज्ज्वल भूत की जो जन्मदात्री रही है, जिसकी कुक्षि मनु, वसिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, दिलीप, भगीरथ, रघु और राम आदि ऋषियों और नृपों को प्रसूत करती रही है, जिसमें हमारा उज्ज्वल भविष्य निहित है, आज भी जिसने दयानन्द, गांधी को जन्म दिया है, उस स्त्री-शक्ति की यशोगाथा गाता हूँ।

स्त्री की भिन्न-भिन्न संज्ञाएं

पुत्रिके! तुझे इस पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए जिन परिस्थितियों से गुज़रना होगा, उन्हें समझ लेना चाहिए। विवाह वेदी पर चरण रखते ही तेरी संज्ञा वधू हो गई थी, श्वशुर गृह में प्रवेश करते ही तू गृहिणी संज्ञा को अलंकृत करेगी।

१— इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती। अथर्व० १४।२।६४

पति के धार्मिक कार्यों में सह भागिनी बन कर पत्नी संज्ञा का लाभ करेगी। समय पाकर भार्या, जाया, धात्री और दारा जैसे गौरवशाली नामों से सम्बोधित की जाएगी।

संज्ञानुरूप कर्त्तव्य—

जहाँ स्त्री की ये भिन्न-भिन्न संज्ञाएं भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की द्योतक हैं, वहां संज्ञानुरूप कर्त्तव्य की भी द्योतक हैं। जिस प्रकार वधू संज्ञा व्यापक है, उसी प्रकार उसके कर्त्तव्य भी व्यापक हैं। वधू संज्ञा इतनी व्यापक है कि घर का हर छोटा-बड़ा बहू या बहूरानी कह कर बुलाता है। घर के बड़े सास-श्वसुर बात-बात में बहूरानी कह कर बुलाएंगे, तब यह श्रुति-मधुर नाम तुझे कितना भायेगा इसका अनुमान करना कठिन है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि तुझसे यह नाम अलंकृत होगा, जिन अलंकारों को पहन कर इस पद को अलंकृत करेगी वे न तो स्वर्णकार के यहां गढ़े ही जाते हैं और न खरीदे ही जाते हैं शील और वृत्त ही वे अलंकार हैं जिन्हें पहन कर हर कन्या सज उठती है।

अगर यह अलंकार स्वीकार होगा,
तो तेरा भी आदर्श श्रृंगार होगा—बेताब

वत्से! धनञ्जय नामक सेठ ने अपनी पुत्री विशाखा को विदा करत समय जो आभूषण पहनाये थे, उन्हें तुझे धारण कर लेना चाहिए। वे उपदेशात्मक आभूषण दश हैं[1] :—

(१) (अन्तो अग्गि बहिं न नीहरितब्बो) अन्दर की आग बाहर न ले जानी चाहिए, अर्थात् सास आदि स्त्रियों की जो गुप्त बातें हों वह दास दासियों से न कहनी चाहिएँ।

१—अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा १।७।२

(२) (वहि: अग्गि अन्तो न पवेसेतब्बो) बाहर की आग भीतर न लानी चाहिए। जो बुराइयाँ दास दासी या पड़ौसी घर के सम्बन्ध में कहते हों उन्हें अन्दर के आदमियों को न कहना चाहिए। इसी प्रकार पितृकुल कीं गोपनीय बातें पतिकुल में और पतिकुल की गोपनीय बातें पितृकुल में न कहनी चाहिएँ। ऐसी बातें बढ़कर कलह कराती हैं। ध्यान रहे, इधर की उधर कही गई छोटी-सी बात भी अनर्थ का कारण होती है।

इसलिए—

जो निन्दा करे कोई नारी किसी की,
तो जाहिर न करना कभी राय अपनी,
मुनासिब है उस वक़्त केवल खामोशी,
करेगी वही वर्ना ख़ुद तेरी चुगली,
तेरे सर पर आ जाएगी सब बुराई,
यूं घर बैठे तू मोल लेगी लड़ाई। —बेताब

(३) (ददन्तस्स दातब्बम्)। देते हुए को देना चाहिए। मांगी हुई वस्तुओं को लौटाने वालों को ही देना चाहिए।

(४) (अदन्तस्स न दातब्बम्) मांगी हुई वस्तुओं को न लौटाने वालों को न देना चाहिए परन्तु इसमें एक अपवाद भी है।

(५) (ददन्तस्सापि अदन्तस्सापि दातब्बम्) देते हुए और न देते हुए को भी देना ही चाहिए। अपने निकट सम्बन्धी और विशेष कर जिन्हें श्वसुर गृह के लोग चाहते हों ऐसे मित्रों को चाहे प्रतिदान कर सकें या न कर सकें देना ही उचित है।

द्रौपदी ने सत्यभामा को परामर्श देते हुए यही बात अन्य प्रकार से कही थी कि तुम्हें चाहिए कि अपने पति के अनुकूल

हितैषी जनों को विविध उपायों से भोजन कराती रहा कर, अर्थात् उन्हें देने में संकोच न किया कर।

(६) (सुख) भुञ्जितब्बम्) सुख से खाना चाहिए। सास, ससुर, विद्वान्, अतिथि, सन्यासी के पहले न खाकर उनको परोस कर, सबको भोजन मिलने की बात जान कर स्वयं भोजन करना चाहिए। कोई ऐसी वस्तु न खानी चाहिए जिसे औरों को न परोसा गया हो।

(७) (सुखं निसीदितब्बम्) सुख से बैठनाचाहिए। सास ससुर के स्थान पर बैठना उचित नहीं, उनसे उच्चासन पर बैठना युक्त नहीं, उनके बैठने का समुचित प्रबन्ध करके ही सुखपूर्वक बैठा जा सकता है।

(८) (सुखं निपज्जितब्बम्) सास, ससुर, स्वामी से पहले विस्तर पर नहीं लेटना चाहिए। उनके लिए करने योग्य सेवा करके तब स्वयं सोना चाहिए।

(९) (अग्गि परिचरितब्बो) सम्यञ्चोग्निं सपर्यत—अग्नि परिचर्या करनी चाहिए। प्रतिदिन अग्निहोत्र करते हुए कुल-अग्नि का विचार करना चाहिए। वह कुल-अग्नि ही परिवार की नाभि है नाभि ठीक है तो परिवार का प्रत्येक सदस्य अरा बनकर उस अग्नि-नाभि में जुड़ा रहेगा, फिर इस व्रताग्नि में हवि डालना ही अग्निहोत्र है, हवन है, अग्नि परिचर्या है।

(१०) (अन्तो देवतापि नमस्सितब्बा)। परिवार के सभी वृद्ध मान्य व्यक्ति नमस्करणीय हैं।

पुत्रिके! ग्राम्य गीतों में भी वहू के मनोद्‌गार इस प्रकार प्रतिध्वनित हुए हैं कि जिन्हें सुनकर आज की सभ्य कही जाने वाली कुल-वधुएं भी उपदेश ग्रहण कर सकती हैं। सोहर के एक गीत में ससुर बहू से पूछता है—हे बहू! तुमने कौनसा तप

किया है कि जो तुम्हारा बच्चा इतना सुन्दर है ? बहू ने उत्तर दिया—मैंने सास की बात कभी नहीं टाली। ननद का तिरस्कार नहीं किया। न कभी इधर की बात उधर लगाई। इसीलिए बच्चा इतना सुन्दर है। अर्थात् सुत लाभ के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है—

(११) सास की बात न टालना

(१२) ननद का तिरस्कार न करना

(१३) इधर की बात उधर न कहना, अर्थात् चुग़ली न करना।

सास, ससुर और बहू के पारस्परिक व्यवहार में गम्भीरता एवं मानमर्यादा का पूरा विचार रखना चाहिए। ऐसा न रखने वाले विदुर के मतानुसार नरकगामी होते हैं। सास का अपमान तथा बुरा करना महापाप है। बहू को सास और ससुर के सम्मुख उपयुक्त वेष में ही आना चाहिए। उनकी उपस्थिति में नौकरों तक को भी आदेश न देना चाहिए। असुरों को श्री इसलिए त्याग गई थी,, कि उनमें बहुत सी बुराइयों में से एक यह भी बुराई थी कि वहां की बहुएं सासों के सामने नौकरों हुक्म चलाती थीं।

वत्से ! शील और वृत्त के कुछ नियम याज्ञवल्क्य १।८७ पर मिताक्षरा में उद्धृत किए गए हैं, जिन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(१४) (नानुक्ता निर्गच्छेत्) बिना आज्ञा के घर से बाहर न जाना चाहिए।

(१५) नानुत्तरीया—ऊपर का कपड़ा ओढ़े बिना न निकले।

(१६) न नाभिं दर्शयेत्—नाभि न दिखाये।

(१७) आगुल्फात् वाससः परिदध्यात—वस्त्र इस प्रकार

पहने कि शरीर का कोई उभार तो क्या, टखना तक भी दिखाई न दे।

(१८) न त्वरितं व्रजेत्—नज़ाकत से न चले। मचलकर न चले। चलने में जल्दबाज़ी ठीक नहीं। सदा मन्द गति से निगाह नीची रखकर ही चलना चाहिए।

(१९) न हसेद् अनपावृता—दान्त निपोर कर ज़ोर से हँसना ठीक नहीं।

(२०) नर्तकी, धूर्त्ता, टकुनियों, जादू टोने करनें वाली दुःशील स्त्रियों के साथ सम्पर्क न रखना चाहिए। इनके संसर्ग से कुल-स्त्रियों का चरित्र दूषित होता है।

मनु ने न करने योग्य निम्न बातें लिखी हैं :-

(२१) सुरापान, बुरे व्यक्तियों का संग, पति से दूर रहना अथवा घूमना, दिन में सोना, दूसरों के घरों में रहना।

(२२) महाकवि कालिदास की सम्मत्ति में पत्नी को पितृ गृह में चिरकाल तक न रहना चाहिए, क्योंकि इससे कीर्ति, चरित्र और धर्म की हानि होती है।

महर्षि कण्व ने अपनी पुत्री शकुन्तला को विदा करते हुए निम्न उपदेश दिया था—जो हर पुत्री के लिए ग्राह्य है। कण्व ने कहा—'वत्से ! त्वमिदानीम् अनुशासनीयासि।' पुत्रिके ! अब विदाई के समय तू अनुशासित की जाने योग्य है।

(२३) शुश्रूषस्व गुरून्—घर के बड़े सास ससुर जेठ जेठानी सभी की सेवा करना।

(२४) प्रियसखीवृत्तिं तु नारी जने—घर की सभी समान वयस्क ननद देवरानी आदि नारी मात्र के प्रति प्रिय सखी भाव को बनाये रखना।

(२५) पत्युर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः—रोष में आकर पति द्वारा विपरीत स्वभाव के प्रदर्शन पर विपरीत

आचरण न करना ।

(२६) भूयिष्ठं भव दक्षिणा **परिजने भांग्येष्वनुत्सेकिनी**—ऐश्वर्य की समुन्नति में परिजनों के प्रति उदारभाव से दक्षिणा देने वाली रहना ।

यान्त्येवं गृहिणीपदम् युवतयो वामा कुलस्याधयः—इस प्रकार कुल वधुएँ उक्त आचरण अपनाकर ही गृहिणी पद को अलंकृत करती हैं । इससे विपरीत आचरण अपनाकर कुल के लिए अभिशाप बन जाती हैं ।

फिर अथर्ववेद की निम्न सूक्ति अपूर्व उपहार है । इस सूक्ति में कहा है कि हे वधू :—

अधः पश्यस्व, मोपरि, संतरांपादकौ हर ।

मा ते कशप्लकौ दृशन्, स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ।। अथर्व

सदा नीची निगाह रख, ऊपर न देख, सावधानी से चरण रख, तेरे उभार अथवा जोडियां अंग दिखाई न दें, क्योंकि स्त्री प्रजनन यज्ञ की ब्रह्मा है । जिस प्रकार यज्ञ में ब्रह्मा मौन रहकर यज्ञ की प्रत्येक क्रिया पर ध्यान रखता है, यजमान के संकल्प को मूर्तरूप देना ब्रह्मा का काम है, उसकी असावधानी यज्ञ की विघातक हो सकती है, तद्वत् तुझे भी सर्वथा अन्तर्मुख होकर प्रजनन यज्ञ की निगरानी करनी है । अल्प सी चूक भी हानिप्रद है । प्रजनन यज्ञ की सफलता तुझ पर आश्रित है ।

स्वयं वेद भगवान् नववधू को निम्न आशीर्वाद देते हैं—

साम्राज्ञी श्वसुरे भव, साम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु । अथर्व १४।१।४४

श्वसुर, सास, ननद, देवर, देवरानी, जेठ, जिठानी के प्रति यथायोग्य कर्त्तव्य को करती हुई उनके मन मस्तिष्क पर राज्य कर । रानी जैसे राजमहल में आनन्द से रहती है, उसी प्रकार रानी बन कर अधिकार के साथ रह ।

ससुर हो कि भर्तार के ज्येष्ठ भ्राता,
जिठानी हो या सास का जिनसे नाता ।
उन्हें तू समझना पिता और माता,
कि सन्तोष तुझको हो हे मेरी जाता !
सुता देवरानी है, सुत तुल्य देवर, ।
यही तो है कुलवान कन्या का ज़ेवर ।—वेताब

पुत्रिके ! ऊपर बताए वधू के कर्त्तव्यों का जैसे-जैसे पालन करेगी, वैसे-२ सबके सम्मान की पात्र बनेगी और शीघ्र ही गृहिणी पद को अलंकृत करेगी । जिस आश्रम में तूने पदार्पण किया है उसका नाम है गृहस्थ, गृहस्वामी का नाम गृही गृहस्थ और गृही शब्द की सार्थकता गृह से और उस गृह की सार्थकता गृहिणी से । ईंट गारे से बने घर का नाम गृह नहीं, गृहिणी का नाम ही गृह है 'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।'[1]

लोक प्रसिद्ध बात है कि किराये पर मकान उन्हें ही नसीब होता है जो विवाहित हों । मकान मालिक पहला प्रश्न यही करता है कि आप विवाहित हैं या छड़े छांट ? यदि आपने कह दिया कि विवाहित, तो तत्काल उत्तर मिलेगा कि आइए, आपको मकान मिल जाएगा । गृहिणी के बिना आपका विश्वास ही नहीं होता। इसीलिए कहा—गृहिणी गृहमुच्यते ।

प्राय: यह अनुभूत बात है कि चार दिन के लिए पत्नी के पीहर चले जाने पर घर उजाड़ सा प्रतीत होने लगता है, सब कुछ अस्त-व्यस्त । आवास गृह का हाल यह कि तौलिया मिल गया तो बनियान का पता नहीं; बनियान हाथ आगई तो अण्डर-वीयर की तलाश हो रही है । आफिस का समय हो रहा है, खाने का कुछ पता नहीं । या तो स्वयं चूल्हा फूंक रहे हैं, अथवा कुलचे छोले खाकर ही गुजर हो रही है । यह सब क्यों ? गृह

१—महाभारत १२।१४५।६

है, पर गृहिणी नहीं। "गृहं तु गृहिणीहीनं अरण्यसदृशं मतम्।" गृहिणी के विना प्रासाद भी अरण्य सदृश है, और गृहिणी की उपस्थिति में वृक्षमूल का आवास भी प्रासाद वन जाता है। अनुव्रता सीता के साथ श्रीराम का तेरह वर्ष का वनवास हंसते-खेलते वीत गया और सीता के अभाव में चौदहवें वर्ष सा लगने लगने लगा। सीता से आवाद पंचवटी भी अयोध्या वन गई और और सीता से शून्य अयोध्या वर्वाद और उजड़ी हुई लगने लगी।

दमयन्ती नल को समझाते हुए यही कहती है कि क्या हुआ यदि राजपाट छिन गया, मैं तो नहीं छिनी, मेरे रहते आपको क्या चिन्ता ? देखना, यही तरुतल का वास राजप्रासाद वन जाएगा। "वृक्षमूलेऽपि दयिता यस्य तिष्ठति तद् गृहम्। प्रासादोऽपि तया हीनः कान्तारादतिरिच्यते ।" महाभारत १२।१४५।६

प्रणवीर प्रताप अपनीं पत्नी के सहयोग से ही अकवर जैसी अजेय शक्ति से टक्कर ले सका। पत्नी द्वारा परोसी घास की रोटियों में वह स्वाद आता था जो महलों के स्वर्ण पात्रों में परोसे गये षड्रसों में भी नहीं आया था। प्रताप की इस सुखद अनुभूति को किसी कवि ने यूं अंकित किया है :—

घनी सिर पर तरुवर की डाल, हरी पैरों के नीचे घास।
पीने को सन्मुख पानी का सोत, घास की रोटी के दो ग्रास।
मुन्ने के ये तुतले से वोल, और फिर सवके ऊपर तुम प्राण !
गा रही छेड़ सुरीली तान, मुझे मरुभूमि नन्दन उद्यान।

मनु ने गृहिणी के कर्तव्यों का वर्णन इस प्रकार किया है— 'सदा प्रहृष्टया भाव्यम्।' गृहिणी को सदा प्रसन्न वदन रहना चाहिए। विशेष कर पति के आने पर हंसते हुए द्वार पर स्वागत के लिए तय्यार मिलना चाहिए। 'गृहकार्येषु दक्षया गृहिणी'— गृहकार्यों में दक्ष हो। घर का कोना-कोना जगमगा उठे।

प्रत्येक वस्तु का स्थान निश्चित हो। अन्धेरे में भी वस्तु के ढूंढ़ने में कठिनाई न हो। हाथ इच्छित वस्तु पर ही पड़े। वस्तु यथास्थान मिले। रसोई घर तो दर्शनीय होना ही चाहिए। हर पात्र स्वच्छ और तरतीब से रखा हुआ मिले। रसोई का हर सामान ढका हुआ हो। दाल, शाक, रायता, खीर, हर वस्तु ढकी हो।

असुरों को श्री इसीलिए त्याग गई थी, कि उनकी स्त्रियें घर की व्यवस्था ठीक नहीं रखती थीं। उनकी रसोई में चूहे, बिल्ली, कुत्ते, और कौओं का राज्य रहता था। हर किसी वस्तु के खुला रहने से चूहे बिल्ली आदि प्राय: पके-पकाये भोजन में मुंह डाल देते थे। उनके यहां स्त्रियें उच्छिष्ट हाथों से ही घी, दही, दूध, आचार आदि ले लेती थीं। इन सभी छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखना गृहिणी का कर्तव्य है। 'गृहकार्येषु दक्षया' गृह कार्यों में दक्षता के द्वारा ही वधू गृहिणी पद पर अधिष्ठित हो जाती है।

सुसंस्कृतोऽपस्करया—

गृहिणी का कर्तव्य है कि जहां वह गृह व्यवस्था में कुशल हो वहां पाकविद्या में निपुण हो। उसके हाथ ऐसे सधे होने चाहिएं, कि बिना तोले ही नमक मीठा आदि ठीक रहे। हर भोजन इतना स्वादिष्ट बने, कि सब छोटे बड़े प्रशंसा करें। ऐसा न हो कि किसी पदार्थ में नमक डाला ही नहीं, वह सर्वथा फीका रह गया हो। इतनी आंच दे दी कि पदार्थ में आंच निकलने की गन्ध आने लगी और कहीं आंच इतनी मन्द रखी कि रोटियें कच्ची ही रह गई। कहीं भोजन बचा सड़ता रहा और कभी घर के लोग भूखे ही रहे। हर बात में नाप तोप। असुरों को श्री ने इसलिए भी त्याग दिया था,

कि उनके घरों में प्रायः बासी भोजन ही खाने को मिलता था। रात्रि का बचा हुआ भोजन प्रातःकाल और प्रातः का बचा हुआ भोजन सायंकाल खाया जाता था। असुरों को श्री इसलिए भी त्याग गयी थी कि उनकी स्त्रियों को यह नहीं पता था कि किस वस्तु के साथ किस वस्तु का योग है। प्रायः वह खीर के साथ रायता परोसती देखी जाती थीं। उन्हें रात्रि भोजन में प्रायः चावल और दही का प्रयोग करते देखा जाता था। कभी-कभी तो कांजी और दूध को एक साथ खाते-पीते देखा गया था। किस शाक-सब्जी में किस पदार्थ का छोंक देने से वह गुणकारी हो जायेगी, किसमें किसके मिश्रण से उसके विकार समाप्त हो जाएंगे इत्यादि के ज्ञान का प्रायः उनमें अभाव था। वत्से ! ये बातें दीखने में सामान्य सी प्रतीत होती है, परन्तु वस्तुतः इनके ज्ञान को ही पाक-विज्ञान कहते हैं। इसी को मनु ने गृहिणी का एक विशेषण कहा है—"सुसंस्कृतोऽपस्करया", सुसंस्कृत पाक क्रिया के द्वारा वधू गृहिणी पद को अलंकृत करती है।

व्यये चामुक्तहस्त्या—

उक्त सभी बातों के अतिरिक्त गृहिणी में जो एक आवश्यक गुण होना चाहिए वह है किसी वस्तु के व्यय करने में सावधानी बरतना। हाथों को इतना खुला न रखना कि घर में किसी वस्तु का संग्रह ही न हो पाये, आवश्यकता पड़ने पर कोई भी वस्तु गृह में न मिले। जो वस्तु पूछी जाय उसी पर हाथ हिलाकर कह दिया कि नहीं है। स्त्री का गृहिणी नाम संग्रह करने के कारण पड़ता है। और संग्रह तब ही हो पाता है जबकि व्यय करने में कुछ मुट्ठी भींच कर करे। यदि गृही ने भरपूर सामान ला रखा हो तो इसका यह अभिप्राय

कभी भी नहीं कि उसे लुटाते रहो और सहसा आवश्यकता पड़ने पर आँय-बाँय ताको। किसी समय भी किसी वस्तु की अपेक्षा हो सकती है। गृहिणी का कर्तव्य है कि वह उस वस्तु को तत्काल उपस्थित कर दे। गृहिणी का अर्थ ही है वस्तु को संग्रह करने वाली। ग्रहण किए जाये, संभाल कर रखे जाये। आवश्यकता पड़ने पर तत्काल लाकर दे दे। और हाथ को इतना सिकोड़ भी न ले कि आवश्यकता पड़ने पर पदार्थ के निकालने तक का नाम ही न ले। इसलिए—

न बन बैठना शहद की मूर्ख मक्खी,
न पाई कभी दान दी, और न चक्खी।
यथोचित् यथाशक्ति तू दान दना,
न उल्टा हो, पात्र को देख लेना।
रंगे स्यार को दूध फेनी में फेना,
मिले वृद्ध संन्यासियों को चवेना।
न हो जाय इस तरह वदइन्तजामी,

गया माल भी, रह गयी फिर भी खामी। वेताब

संभवतः स्त्री को गृहिणी कहे जाने का एक कारण यह भी हो कि यह पुरुष द्वारा ग्रहण की जाती है। अभी-अभी विवाह संस्कार में पाणि-ग्रहण के अवसर पर वर द्वारा यह मंत्र पढ़ा गया था—"गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्", मैं सौभाग्य वृद्धि के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूं। इस पाणि-ग्रहण के साथ ही कोई भी कन्या गृहिणी बन जाती है। वर न केवल हाथ ही ग्रहण करता है, अपितु पत्नी के हृदय, चित्त और मन को भी ग्रहण करता है, जिसकी घोषणा तुम दोनों ने परस्पर एक दूसरे का हृदय स्पर्श करते हुए की थी। "मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु मम वाचमेकमना

जुषस्व प्रजापतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यम् ।" परस्पर एक दूसरे से ग्रहण किए जाने के कारण पत्नी गृहिणी है, पति गृही है।

जहां पत्नी के सर्वस्व पर पति का आधिपत्य होता है, वहां पति के सर्वस्व पर पत्नी का भी अधिकार होता है। यहां तक कि पत्नी तो पति के सर्वस्व को अपने में संगृहीत कर लेती है, समेट लेती है। उसके तन, मन, धन की गृहिणी होती है। पति के लिए केवल मात्र वही एक स्त्री और पत्नी के लिए केवल मात्र वही एक पुरुष। पति के लिए वह केवली' तो पत्नी के लिए वह 'केवल'। जहां पति के हृदयोद्गार अथर्ववेद के इस 'मृदुर्निर्मन्युः केवली प्रियवादिनी अनुव्रता'[1] मन्त्र में मुखरित हुए हैं वहां पत्नी के हृदयोद्गार अन्यत्र इस प्रकार उद्घोषित हुए हैं कि आप इस प्रकार आचरण करें जिससे आप मेरे ही सिद्ध हों, किसी अन्य के नहीं—"यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन।"[2] अन्य स्त्री का नाम लेना भी अपराध है। यह परस्पर का आमरण व्यवहार ही दोनों की कैवल्य अवस्था है।"[3]

कैवल्य उस अवस्था को कहते हैं जिसमें अपना पराया नहीं रहता। मैं तू नहीं रहता। दुई भाव नहीं रहता। यह पारलौकिक अवस्था तो सुनी गई परन्तु जागतिक कैसे? बस, इसी का प्रत्यक्ष गृहस्थ में होता है। पति-पत्नी का भी अपना पराया कुछ नहीं रहता। तू मैं नहीं होता। दुई भाव

१—मृदु— अथर्व० ३।२५।४

२—यथासो—अथर्व० ७।३७।१

३—अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः। मनु० ९-१०१

नहीं रहता । केवल अवस्था ही कैवल्य अवस्था है । परन्तु इस कैवल्य अवस्था लाने के लिए वेद ने केवली शब्द से पहले और पीछे दो-दो विशेषण जोड़ दिए हैं । केवली से पहले मृदु और निर्मन्यु तथा पीछे प्रियवादिनी और अनुव्रता विशेषण दो सम्पुट हैं जिनमें कैवल्य पलता है । केवली होने के लिए जहां पत्नी को अत्यन्त मृदु और निरमन्यु (क्रोध रहित) होना चाहिए, कभी क्रोध का प्रदर्शन न हो, माथे पर त्योरी न आए, आंखों में लाल डोरे न झलकें, नासापुटों से फुफकार न निकले; वहां अत्यन्त प्रिय बोलने वाली और अनुव्रता भी होना आवश्यक है । इन चार गुणों के आते ही गृहस्थ कैवल्य-धाम या स्वर्ग-धाम बन जाता है । इसीलिए वत्से ! इन गुणों को अपनी अन्तःकरण पेटिका में संजो लेना । देखना—

किसी बात पर डांट भी दें जिठानी,
खफा और घर वाले हों नागहानी,
हमें गालियां दें अगर वृद्ध नानी,
तो उस वक्त करना यही सावधानी,
पलट कर उन्हें कोई उत्तर न देना;
बतंगड़ जरा बात को कर न देना ।
दबेगा न उत्तर से गुस्सा किसी का,
करेगा मगर काम जलते पै घी का,
नहीं कोई उत्तर खामोशी से नीका,
यहां खत्म हैं टिप्पणी और टीका,
हराती है सौ को अकेली खामोशी,
कि है शान्ति की सहेली खमोशी ।
आगर सास ने शब्द कड़वा कहा है,
तो इस पर बुरा मानना ही बुरा है,

इसे चुप से पीना इसी में भला है,
कि ये वैद्यरानी की कड़वी दवा है,
न इससे कलह रूप सरसाम होगा,
जरा देर पीछे खुद आराम होगा ।

समझ लेगी जब यूँ समझदार तुझको,
करेंगी वो मां की तरह प्यार तुझको,
अगर आ गया उच्च व्यवहार तुझको,
बना देंगी घर भर का मुखतार तुझको,
बड़ा मान घर की अदालत करेगी,
जिठानी भी तेरी वकालत करेगी ।

अगर बोलनी आगई मीठी बोली,
सुमन-तुल्य है फिर तमञ्चे की गोली,
जो घर में बहू बेटियों की है टोली,
समझ ले जो तुझसे मिली तेरी हो ली ।
वही धन्य है जिसकी वाणी मधुर है,
ये कुनबे में सत्कार पाने का गुरु है ।

"पत्नी त्वमसि धर्मणा'[1]—

विवाह विधि में पाणि-ग्रहण के जिस मंत्र में वर ने तेरे और अपने, पत्नी तथा पति नामों की घोषणा की है, वहां उनका आधार धर्म को बताया है। वर ने अभी कहा था पत्नी त्वमसि धर्मणा अहं गृहपतिस्तव ।" यहां त्वम् और अहम के बीच पड़ा धर्म शब्द देहली-दीप-न्याय से पत्नी पति दोनों संज्ञाओं को समेट लेता है। अर्थात् वर की इस घोषणा का अभिप्राय यह है कि मैं यदि पति हूं तब, और तू यदि पत्नी है तब धर्म के

१—ऋ० १०।८५।३६

कारण है, रूप और रुपये के कारण नहीं। वैदिक धर्म में पति और पत्नी शब्दों से पहले धर्म शब्द का जोड़ा जाना आवश्यक है—धर्मपति और धर्मपत्नी ।

धर्म की रक्षा—

पति और पत्नी शब्द का मूल एक ही 'पा' रक्षणे धातु है, जिसका अर्थ है रक्षा करना। पति का अर्थ हुआ रक्षा करने वाला और पत्नी का अर्थ हुआ रक्षा करने वाली। परन्तु प्रश्न उठता है—किसकी रक्षा करने वाले ? बस, इसी शंका की निवृत्ति के लिए धर्म शब्द साथ जोड़ दिया, कि स्त्री और पुरुष धर्म की रक्षा करके ही पति पत्नी पदों पर अधिष्ठित होंगे। दोनों ने मिलकर धर्म की रक्षा करनी है। दोनों का धर्म एक ही है। पुरुष ने जब अपने को धर्म की रक्षा में दुर्बल पाया तो स्त्री को सहभागिनी बनाया। इससे पत्नी का कर्तव्य हो गया कि पति के धर्म की व्रत की, यज्ञ संकल्प की रक्षा करे। महाराजा जनक ने अपनी पुत्री सीता का हाथ राम को सौंपते हुए यही कहा था—'इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।" यह मेरी पुत्री सीता तेरे धर्म के अनुकूल आचरण करने वाली है। धर्म ही वह तत्त्व है जो पति-पत्नी के सम्बन्ध को दृढ़ और अक्षुण्ण बनाए रखता है। रूप और रुपये पर आधारित सम्बन्ध स्थायी नहीं रहते, धर्म पर आधारित सम्बन्ध ही स्थायी होते हैं। अतः पुत्रिके ! पत्नी नाम को सार्थक करने के लिए पति के धर्म की रक्षा करनी होगी।

गृहस्थरूपी गाड़ी की धुरी को वहन करने के कारण जहाँ तू वह+धू वधू कहलाएगी, गृह में प्रत्येक वस्तु को सुव्यवस्थित और संगृहीत करने के कारण जहाँ तू गृहिणी कहलाएगी, वहां पति के साथ धर्म कार्यों में भागीदार बनकर पत्नी कहाएगी। तेरे

विना पति का यज्ञ निष्फल है। श्रर्थं राम का अश्वमेध यज्ञ चल न सका, जब तक कि पत्नी के आसन पर सोने की सीता गढ़ कर नहीं रखी गई। बस, सभी श्रेष्ठ कर्मों में सहभागी होने से ही तू पत्नी नाम को सार्थक करेगी। पाणिनि मुनि ने तो अपने 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगें' ४।१।३३ सूत्र में स्त्री की पत्नी संज्ञा यज्ञ कार्यों में सहयोग देने पर ही मानी है।

पत्नी गृहस्थ का मूल है। उसी की सहायता से पुरुष सन्तानोत्पादन करके पितृऋण से मुक्त होता है। वही उसके पितरों को तारने वाली है। उसी के साथ यज्ञ करके पति स्वर्ग-गामी होता है। इस दुनियां की दुःखपूर्ण बीहड़ यात्रा में पत्नी ही पुरुष का सहारा होती है। पत्नी ही धर्म, अर्थ, काम का मूल है; संसार सागर से तरने की नौका है। प्रियंवदा पत्नियां ही एकान्त में पति का मित्र होती हैं। वे बियावान मार्ग में पथिक का विश्राम स्थल हैं। पत्नीवान् का ही विश्वास किया जाता है। पत्नी ही मनुष्यों की परम गति है। जूए में सब कुछ हराकर मूढ़वत् बैठे हुए और अप्रतिष्ठा के सागर में डूबते हुए युधिष्ठिर महाराज को उनकी साध्वी पत्नी द्रोपदी ने ही पार लगाया था। इसलिए पत्नी का कर्तव्य है कि पति की हर अवस्था में रक्षा करे, उसे कहीं किसी जगह अपमानित न होने दे।

महाभारत की शकुन्तला पत्नी के महत्त्व पर प्रकाश डालती हुई कहती है—मानसिक दुःखों से संतप्त तथा बीमारियों से आतुर पुरुष अपनी स्त्रियों से उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं जैसे पसीने से नहाये व्यक्ति शीतल जल से स्नान करके प्रसन्नता लाभ करते हैं। पति को पत्नी का कभी अप्रिय नहीं करना चाहिए क्योंकि रति, अर्थसार्थकता, प्रीति और धर्म उसी के हाथ में हैं। स्त्रियां सन्तान की सनातन पुण्य जन्म-भूमि हैं। ऋषियों में भी ऐसी शक्ति नहीं है कि स्त्री के बिना प्रजा की

सृष्टि कर सकें (म० भा० १।७४।५२-५२)। इससे अधिक सुन्दर शब्दों में पत्नी की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। पत्नी के इस यशोगान का वर्णन अभी-अभी वर ने इस प्रकार किया था—अभी तक भी वे ओजस्वी शब्द कानों में गूञ्ज रहे हैं:—

> यस्यां भूतं समभवत् यस्यां विश्वमिदं जगत् ।
> तामद्य गाथां गास्यामि स्त्रीणां यदुत्तमं यशः ।

पत्नी के कर्तव्य—

पुत्रिके ! अब तुझे पत्नी के कर्तव्यों का कुछ बोध कराता हूं। पत्नी का सर्वप्रथम कर्तव्य है पति की सेवा। धर्मशास्त्रों में स्त्री का प्रधान कर्तव्य पति-सेवा और पातिव्रत्य का पालन बताए गये हैं। शंख के मत में स्त्री को व्रत, उपवास, यज्ञ, दानादि से वैसा फल नहीं मिल सकता जैसा पति-सेवा से मिलता है। सीता की सम्मति में पत्नी के लिए पति-सेवा से अतिरिक्त कोई तपस्या नहीं। सत्यभामा को द्रौपदी ने धर्मराज युधिष्ठर को अपने वश में रखने का सबसे बड़ा मूलमंत्र पति-सेवा ही बताया था। द्रौपदी ने कहा— मैं उनकी आज्ञापालक, अहंकारशून्य, उनके विचारों का सदा ध्यान रखने वाली हूं। उनको बुरा लगने वाले कथन, स्थान, दृष्टि, बैठने, बुरा चलने तथा बुरे इशारों से सदा बचती रहती हूं। उनके स्नान, भोजन और आसन ग्रहण करने से पहले मैं ये कार्य नहीं करती। उनके न पीने योग्य और न खाने योग्य का भी सेवन नहीं करती। उनकी अराधना करते हुए मेरे लिए दिन-रात बराबर है। मैं प्रातःकाल उनसे पहले उठती हूं और रात को उनके पीछे सोती हूं। (३।१२३।४)

आर्य परिवार में संभवतः पति-सेवा का सर्वोच्च आदर्श

सीता ने रखा है। चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा होने पर श्रीराम की यह इच्छा है कि कोमलांगी सीता वन्य जीवन के भयंकर कष्टों से बची रहे। किन्तु वह पति-सेवा के लिए भीषणतम कष्ट सहने को तय्यार है। (वा० रा० २।२६) उसने कहा था—'हे राघव! यदि आप आज दुर्गम वन को जाते हो तो मैं आपके आगे-आगे काँटों और कुशा घास को कुचलती हुई चलूंगी। उच्च अट्टालिकाओं तथा विमानों में बैठकर आकाश में विहार करने की अपेक्षा, सब अवस्थाओं में पति के चरणों की सेवा ही श्रेष्ठ है। यदि स्वर्ग में भी वास करना मिले, तो मैं उसे आपके बिना पसन्द न करूंगी।" श्रीराम ने जब उसे पहाड़ी कन्दराओं में गरजने वाले सिंहों, नदियों के सर्वभक्षी ग्राहों, वनों के हाथियों और काले सर्पों का डर दिखाया, तो सीता ने उत्तर दिया—'जब आप मेरे साथ होंगे तो मुझे इन हिंस्र जन्तुओं का क्या भय है! मार्ग में आने वाले सरकाण्डे और कांटेदार पेड़ मुझे रुई और मृगचर्म के समान स्पर्श वाले प्रतीत होंगे। आपके साथ जो वस्तु है वह मेरे लिए स्वर्ग है, आपके बिना जो कुछ है वह सब नरक है।" (२।३०।३-१९) अन्धेरे में छाया व्यक्ति का साथ छोड़ देती है, किन्तु विपत्ति में सीता ने राम का साथ नहीं छोड़ा। उसकी यह यह प्रतिष्ठा आर्य नारियों के लिए सहस्रों वर्षों के प्रबल झंझावात में भी अमन्द आभा रखने वाला ज्योति-स्तम्भ रहा है। पुत्रिके! इसीके प्रकाश में तुझे अपना मार्ग प्रशस्त करना होगा। पति-सेवा को सर्वोपरि धर्म समझना होगा।

है कर्त्तव्य तन मन से स्वामी की सेवा,
कि है स्वामी-सेवा का फल मिष्ट मेवा।
न गंगा न यमुना न सरयू न रेवा,
मगर है यह मन्दाकिनी मुक्ति देवा।

पति को जो पूजेगी, उद्धार होगा,
इसी घाट तेरा बेड़ा पार होगा ।—बेताब

पातिव्रत्य धर्म

पुत्रिके ! पत्नी के लिए पति-सेवा से अतिरिक्त पातिव्रत्य धर्म का पालन है। पातिव्रत्य का आदर्श यह है कि एक बार किसी पुरुष से विवाह होने के पश्चत् उसमें न्युनतायें होने पर भी दूसरे पुरुष का मन में भी विचार न करना।

सावित्री, इस बात की सूचना मिल जाने पर भी कि उसके द्वारा वरण किये सत्यवान् की आयु अत्यल्प है, अपने पातिव्रत्य धर्म से विचलित नहीं हुई। उसने अपने पिता को स्पष्ट कह दिया कि सत्यवान् लम्बी आयु वाला हो या छोटी आयु वाला, गुणवान् हो या गुणशून्य, मैंने एक बार पति चुन लिया है। दूसरा पति नहीं चुनूंगी। (महाभारत ३।२९४।२७) पिता को कन्या का आग्रह स्वीमार करना पड़ा।

गान्धारी को जब यह पता लगा कि उनका विवाह अन्धे धृतराष्ट्र के साथ होना है, तो उसने अपनी आँखों पर कई तहों शक्ति वाली पट्टी बांध ली, ताकि उसके चित्त में पति के प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव उत्पन्न न हो। (महाभारत १।११०। १४)

स्त्री मात्र की आदर्श—

पुत्रि के ! पातिव्रत्य धर्म का पालन करने में भगवती सीता का स्थान सर्वोपरि है। राक्षसराज द्वारा लंकापुरी में अपहृत होने पर भी सीता जरा विचलित नहीं हुई और अपने धर्म-पर अडिग रही। राक्षसियों ने विकराल रूपों द्वारा उसे अनेक प्रकार के भय दिखाये, किन्तु सीता अपने पातिव्रत्य पर अटल रही। उसने बड़े ओजस्वी शब्दों में कहा—'दीन हो या राज्यहीन,

पति ही मेरा गुरु है। मैं उसी तरह राम में अनुरक्त हूं जैसे सुवर्चला सूर्य के, शची इन्द्र के, अरुन्धती वसिष्ठ के लोपामुद्रा अगस्त्य के, सुकन्या च्यवन के और सावित्री सत्यवान् के साथ थी; जैसे सौदास, सगर और नल के साथ क्रमशः मदयन्ती, केशिनी और दमयन्ती अनुरक्त थीं। चन्द्रमा का उष्ण होना, अग्नि का शीतल होना और समुद्र के पानी का मीठा होना संभव था परन्तु सीता का सतित्व से विचलित होना अशक्य था। रावण का अनन्त वैभव उसे न लुभा सका। उसके दण्ड का भीषण भय भी उसे अपने संकल्प से न डिगा सका। पातिव्रत्य की सर्वोच्च मर्यादा स्थापित कर उसने भगवती का पवित्र पद पाया। उसका अनुपम धैर्य्य, अद्वितीय साहस, अतुलनीय पतिभक्ति और अलौकिक सतीत्व आर्य परिवारों में नारियों को सत्पथ पर दृढ़ रहने और सतीत्व की परम्परा अक्षुण्ण रखने की प्रेरणा का अजस्र स्रोत है। पुत्रिके! इस निर्मल स्रोत में स्नान कर तू भी अक्षय शान्ति का लाभ करेगी।

पति का कर्त्तव्य—

पुत्रिके! जहां पत्नी के लिए पति-सेवा और पातिव्रत्य धर्म आवश्यक हैं, वहां पति के लिए भी दोनों ही कर्तव्य तुल्य हैं। उसे भी पत्नी को सेवा रक्षा और सम्मान द्वारा सन्तुष्ट रखना चाहिए और पत्नीव्रत धर्म का पालन करना चाहिए। मनु ने संक्षेप में स्त्री और पुरुष का यह परम धर्म बताया है कि वे मृत्यु पर्यन्त एक दूसरे के प्रति सत्यसन्ध (वफादार) रहें। अथर्ववेद में इन्द्र से यह प्रार्थना है कि वह पति पत्नी को एक दूसरे के प्रति चकवा चकवी के जोड़े की भाँति सच्चा रहने की प्रेरणा करे। इसलिए न केवल पत्नी का ही यह कर्तव्य है अपितु पति का भी कर्तव्य है कि पत्नी के प्रति पूर्ण निष्ठावान्

रहे । उसे छोड़कर भिन्न स्त्री का मन से चिन्तन भी न करे। यही परस्पर का व्यवहार पत्नीव्रत और पतिव्रत धर्म है ।

पुत्रिके ! पति के शास्त्रकथित क्या कर्त्तव्य हैं, उनका उल्लेख करना भी अयुक्त न होगा, जिससे तू उन्हें विपथगामी होने पर याद दिला सके ।

पत्नी का भरण—पति द्वारा पत्नी के भरण की व्यवस्था सार्वभौम है । इसका मूल कारण जीव-शास्त्र से सम्बन्ध रखता है । आत्म-संरक्षण के लिए आवश्यक है कि पति पत्नी का भरण पोषण करें ।[१] पक्षियों में हम यह देखते हैं कि मादा अण्डे को सेती है और नर उसकी रक्षा करता है और उसके लिए सामग्री जुटाता हैं । यदि ऐसा न करें तो उनकी जाति की जाति नष्ट हो जाय । मानव भी इन्हीं कारणों से पत्नी की रक्षा करने के लिए बाध्य होता है । जो पुरुष भार्या के रक्षण में असमर्थ है वह महान् अपयश पाता है तथा नरक में जाता है ।

पत्नी की रक्षा—पत्नी के भरण के साथ उसके रक्षण का भी कार्य जुड़ा हुआ है । रक्षण का सामान्य अभिप्राय है शत्रुओं तथा भौतिक संकटों से रक्षा । महाराज युधिष्ठिर के लिए यह सबसे बड़ा कलंक था कि वह अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सके । इसके विपरीत द्रौपदी ने ही उनको और शेष पाण्डवों को दासता से मुक्त कराया था । दुर्योधन ने अपनी पत्नी की रक्षा में असमर्थ युधिष्ठिर को नपुंसक कहा था । युधिष्ठिर के लिए इससे बढ़कर संताप क्या हो सकता था ?

१—भार्यायाः भरणाद् भर्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः । महाभारत १।१०४।३१। भरणाद्धि स्त्रिया भर्ता पालनाच्चैव स्त्रियाः पतिः गुणस्यास्य निवृत्तौ तु न भर्ता न पुनः पतिः । महाभारत १२।२६६।२६

पत्नी नाश से सर्वनाश—

मनु के मत में मनुष्य अपनी पत्नी की रक्षा से अपने पुत्र, चरित्र, कुल, आत्मा तथा धर्म की रक्षा करता है। हारीत पत्नी के नाश में सर्वनाश मानता है। पत्नी के नष्ट होने पर कुलनाश होता है, कुलनाश से पुत्र-पौत्रादि वंशपरम्परा (तन्तु) नष्ट हो जाती है। इसके नष्ट होने पर देवताओं और पितरों के यज्ञों का लोप हो जाता है। यज्ञ नष्ट होने से धर्मनाश और धर्मनाश से आत्मनाश अर्थात् सर्वनाश हो जाता है।

पत्नी के प्रति मधुर व्यवहार—

पत्नी के भरण और रक्षण के अतिरिक्त पति का यह भी कर्तव्य है कि वह पत्नी के प्रति प्रेमपूर्ण और उत्तम व्यवहार करे। विदुर के मत में पति को यह उचित है कि वह उसके साथ (प्रत्येक वस्तु) सम विभाग करे, उसके साथ मीठे वचन बोले, उसके प्रति कोमल रहे और मधुर बाणी का प्रयोग करे। ५।३८।१०। पति को मधुर वाणी के प्रयोग का ही परामर्श नहीं दिया गया अपितु पत्नी के साथ विवाद न करने का तथा दुर्वचन न कहने का भी आदेश दिया है और ऐसा करने वाले पुरुष की तीव्र फत्संना की गई है। पत्नी को गाली देने वालों के लिए नरक में स्थान बताया गया है। (महाभारत ५।३७।५)

पत्नी का सम्मान—

पत्नी के प्रति उत्तम व्यवहार ही पर्याप्त नहीं है, उसका सत्कार भी होना चाहिए। पति को अपनी पत्नी का पूर्ण सम्मान भी करना चाहिए। स्त्रिया पूजा के योग्य, महाभाग्यवती और पुण्यशीला हैं, वे घर की शोभा हैं—(महाभारत ५।३८।१०) भीष्म कहते हैं—स्त्रियां मान योग्य हैं। हे मनुष्यो ! उनका मान करो। स्त्री से धर्म, रति और पुत्र का कार्य पूरा होता है।

तुम्हारी परिचर्या और सेवा उनके आधीन है। सन्तान का उत्पादन, उत्पन्न सन्तान का परिपालन और सांसारिक जीवन में प्रीति, पत्नी के कारण होती है। इनका सम्मान करना चाहिए। इससे तुम्हारे सब कार्य सिद्ध होंगे। जो पति बहुत कल्याण चाहता हो, उसे स्त्री को अलंकारों से भूषित करना चाहिए। मनु यह भी कहता है कि स्त्री इस प्रकार भूषित पूजित और सम्मानित होने से शोभायमान होती है। उसके ऐसा होने पर सारा कुल चमक उठता है। यदि वह शोभायमान नहीं होती तो कुल भी नही चमकता। पत्नी को अलंकार, वस्त्र आदि से शोभा सम्पन्न बनाने का यह कारण बताते है कि यदि वह इनसे कान्तिमती न हो तो पति को प्रसन्न नही कर सकती और पति को प्रसन्न न रखने से सन्तान नहीं होती। अतः सन्तानोत्पादन का वैवाहिक प्रयोजन पूरा करने के लिए पत्नी का कान्तिमती व शोभासम्पन्न बनाना पति का कर्तव्य हैं। परिवार के उच्चतम आदर्श का चित्रण करते हुए मनु कहता है—जिस कुल में पति पत्नी से तथा पत्नी पति से सन्तुष्ट रहते है, वहाँ सदा अविचल कल्याण बना रहता है। मनु० ३।६०

पुत्रिके! यह उपहार अपूर्ण रहेगा यदि यह न बताया जाय कि तुम दोनों में परस्पर कौन सा भाव काम करना चाहिए। वेद की दृष्टि में सखाभाव ही सर्वोत्तम है। पति-पत्नि एक दूसरे के श्रेष्ठतम सखा है। यह बात 'सखा ह जाया' 'भार्या श्रेष्ठतमः सखा' आदि वाक्यों में ध्वनित हुई है। इसकी सम्पन्नता विवाह संस्कार में सात कदम चल कर की गई है। वर कहता है—आओ, मेरे साथ सात कदम चल लो, तब कहीं मेरी श्रेष्ठतम सखा बनोगी।

सप्तपदी—

इस सप्तपदी क्रिया का इतना महत्त्व है कि सारी विधि

कर जाइए, केवल मात्र सप्तपदी क्रिया को छोड़ दीजिए, तो विवाह सम्बन्ध की कोई वैधानिकता न होगी। उस सम्बन्ध को सम्बन्ध ही न माना जायेगा। जिस सप्तपदी क्रिया का इतना महत्त्व है उसका अन्तिम सातवां पग सखा भाव के लिए ही उठवाया जाता है। पहले छः पग तो इसी सखा भाव को स्थिर करने के लिए हैं। सखा भाव को स्थायित्व तभी प्राप्त होगा जबकि पहले छः चरण उठाये जाएँगे।

साप्तपदीनं सख्यम्—

प्राचीनों में पद्धति थी कि किसी को मित्र बनाना होता था तो उसे कहा जाता था कि आओ, सात कदम चल लें। सात कदम चल लिए कि मित्र बन गये और वह मित्रता आमरण अटूट रहती थी। उन सात पगों का क्या अभिप्राय था, कह नहीं सकते। यहाँ तो स्पष्ट ही एक-एक पग किस उद्देश्य से उठाना है इसकी घोषणा की गई है। हर चरण सखा भाव को स्थिर करने के लिए है। पहले छः चरणों से ने किसी एक का अभाव भी सखा भाव में कमी ला सकता है।

वर ने सबसे पहला चरण अन्न की प्राप्ति के लिए उठाया है। गृहस्थ में परस्पर स्नेह को अक्षुण्ण रखने के लिए अन्न की प्राथमिकता है। उसी स्नेह अथवा मैत्री के स्थायित्व के लिए बल की आवश्यकता है, अतः दूसरा चरण परस्पर बल की वृद्धि और रक्षण के लिए उठाया जाता है। जहाँ 'इषे एकपदी भव' कहकर पहला चरण उठवाया जाता है, वहाँ 'ऊर्ज्जे द्विपदी भव' कहकर दूसरा चरण उठवाया जाता है। पति पत्नी के सखीत्व में ये दोनों मूलाधार हैं—इष और ऊर्ज्ज, अन्न और बल। इष और ऊर्ज का अर्थ जहाँ अन्न और बल है वहाँ इच्छा-शक्ति और उत्साह-शक्ति भी है। कदाचित् घर में अन्न और शारीरिक बल

का अभाव भी हो, परन्तु इच्छा-शक्ति और उत्साह-शक्ति तो बनी रहनी चाहिए, क्योंकि स्थूल शक्ति की अपेक्षा सूक्ष्म शक्ति का अधिक महत्त्व है। यह सब कुछ होकर भी यदि तीसरा चरण नहीं उठा तो भी मैत्री स्थिर न रह पायेगी। इसलिए वर कहता है कि आओ, तीसरा चरण आय-व्यय को सन्तुलित रखने के लिए उठाएँ—"रायस्पोषाय त्रिपदी भव।" धन को बचाने की भी कुशलता होनी चाहिए। जहाँ आपकी उपलब्धि के नये-नये स्रोत खुलें वहाँ व्यय के हीन स्रोतों को बन्द कर दे, अन्तथा वह व्यय न होकर अपव्यय कहलाएगा। फिर हम राय का पोषण न कर सकेंगे। इसलिए आओ, व्यय की मात्रा को आय से वढ़ने न दें। 'ते ते पाँव पसारिए जेती लाँवी सौर।'

'रायस्पोषाय त्रिपदी भव' में जहाँ उक्त भाव निहित है, वहां एक भाव यह भी है कि हम ऐसे धन के स्वामी हों जो पोषक हो, शोषक न हो—'रायस्पोषाय न तु रायश्शोषाय"। ऐसा धन नहीं चाहिए जो किसी के शोषण से प्राप्त हुआ हो अथवा हमारा ही शोषण करने वाला हो। पोषक धन के स्वामी होकर ही हम सच्चे सुख का उपभोग कर सकते हैं। तब कहीं कहा जागगा "मायोभव्याय चतुष्पदी भव।" अब आओ, चौथा चरण उठाएँ।

इन चार चरणों के उठने पर भी यदि पञ्चम चरण न उठाया गया तो परस्पर मैत्री में बाधा उपस्थित होगी, कटुता बढ़ेगीं, जीवन नीरस और दूभर हो जायेगा। वह आवश्यक चरण है। इसीलिए वर ने उसकी ओर निर्देश करते हुए कहा जन प्रज्ञ प्रयत्त उद्धना (धर्म) 'पञ्चपदी भव।' आओ, उत्कृष्ट सन्तति के लिए पाँचवाँ चरण बढ़ाएं। घर में अन्न हो, शरीर में बल हो, बैंक में धन हो, परिवार में ऐश्वर्य हो, परन्तु गोदी में सन्तान न हो तो सब नीरस हैं।

सन्तान के लिए बड़े-बड़े राजाओं-महाराजाओं को विह्वल पाया गया है। संसार की अनेकों वस्तुओं में सुख देखा जाता है परन्तु जो सुख पुत्र प्राप्ति में हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है। दम्पति के अतःकरण को मिलाने वाली यदि आनन्द ग्रन्थि है तो पुत्र ही हैं। महाकवि भवभूति ने इसका वर्णन कितना सात्विक किया है—"अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेह-संश्रयात्। आनन्दग्रन्थिरेकोऽपत्यमिति बध्यते।" उत्तर-रामचरित। ३।१७

इस पुत्र प्राप्ति रूप पंचम चरण के लिए आवश्यक साव-धानी की आवश्यकता है, जिसकी सूचना छठे चरण में दी गई है कि आओ, मर्यादित जीवन बिताएं। हर बात में नाप-तोल हो। अन्न, धन, बल, सुख और सुत लाभ में विशेषतया जिस चरण की आवश्यकता है उसका नाम है ऋतु अनुकूल आचरण। इसलिए कहा गया है कि "ऋतुभ्यः षट्पदी भव।" यदि इन कदमों में दृढ़ता होगी तब कहीं हम दोनों सखा-भाव को स्थायित्व दे सकेंगे और तब मेरे साथ सातवां चरण उठाना। मैं कहूंगा "सखो सप्तपदी भव।" सखा भाव के लिए सातवां चरण उठाओ।

वत्से! इस प्रकार तेरा हर कदम अडिग और अविचल होगा, तभी सौख्य और सख्य भी अविचल होगा, पति का सौभाग्य और तेरा सुहाग भी अविचल रहेगा। हमारी ओर से जहां ये उपहार हैं वहां शतमुखों से निकला हुआ आशीर्वाद सन्त कवि तुलसी के शब्दों में यूं है :—

बेटी अचल रहे सुहाग तुम्हारा।
जब लों गंग यमुन की धारा।

स्वर्णकार द्वारा गढ़े हुए अलंकारों से शरीर को, मेरे उपदेशात्मक उपहारों से मस्तिष्क और मन को, माता-पिता

भाई, भाभी के स्नेह से चित्त को, छोटे भाई और बच्चों के प्यार से हृदय को अलंकृत किये जब यहां से विदा लोगी तो एकबारगी हम सभी का हृदय भर आएगा और आवश्यक है कि आंखों की प्यालिएं भी छलक उठें। औरों की तो कथा ही क्या मुझ जैसे व्यक्ति का भी गला भर आएगा, बोलना दूभरा होगा। स्नेहाश्रु से आंखों पर ऐसा पर्दा पड़ेगा कि जिससे स्पष्ट न दिख पायेगा। उस समल पुत्री शकुन्तला को विदा करते हुए कण्व की सी अवस्था मेरी भी होगी :—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया।
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजड़ दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः।
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवै :॥ श० ४-६

परन्तु यह सब कुछ होकर भी तुझे पति कुल के लिए विदा करते हुए हम अपने को स्वस्थ और हलका अनुभव करते हैं क्योंकि अन्ततः कन्या परकीय धन ही तो है कहा भी है—

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।

शाकु० ४।२२

है जगदीश से प्रार्थना यह हमारी,
सुहागन रहे तू सदा हे दुलारी,
कटे शील व्रत धार कर उम्र सारी,
सती गुणवती हो, पती की हो प्यारी,
बढ़े दम्पती-प्रेम का ज्ञान निश दिन
रहे दो शरीरों में इक जान निश दिन।
मैं 'बेताब' हूं कि समय ने रुलाया,
तथापि मैं खुश हूं कि यह वक्त आया,

विदा करके तुझको है सन्तोष पाया,
कि था मेरी रक्षा में ये धन पराया,
हुआ आज वह धन धनी के हवाले।
बस अब वह संभाले कि ईश्वर संभाले। बेताब

जब तू हृदय में उत्साह और उमंग के मिश्रित भावों को लिए हुए विदा होगी और तेरे पति सुनहले स्वप्न लिए अपने गृह पहुंचेंगे और द्वार पर सौभाग्यवती कुलवधुएं तथा वात्सल्यदायिनी मातृ तुल्य तेरी सास आंखें बिछाए प्रतीक्षा कर रही होंगी और गृह द्वार पर ही तुझे सहारा देकर सवारी से उतारा जाएगा, तो तेरे पति मुख पर पड़े हुए घूंघट को कुछ हटाकर कहेंगे—"सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं वि परेतन।" ऋ० १०।८५।३३।—देखिये, मैं मंगलदायिनी वधू लेकर आया हूं, आप सभी इसे सौभाग्य का आशीर्वाद दें। तब सभी उपस्थित व्यक्ति वेद के इस मंत्र द्वारा तेरा यशोगान करेंगे।

सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भुः।
स्योना श्वश्र्वै प्रगृहान् विशेमान्।

अर्थात् हमारे घर में उत्तम मंगलदायिनी, गृहों को तैराने वाली, पति के लिए सुसेनीया, श्वसुर के लिए शान्तिदायिनी, सास के लिए सुखदायिनी वधू प्रवेश करे।

और हम आशीर्वाद देते हैं :—
ओं सौभाग्यमस्तु। ओं शुभं भवतु।
तेरा अविचल सौभाग्य बना रहे। सर्वत्र शुभ हो।

हम नहीं, वे क्या कहते हैं

श्री आचार्य कृष्ण जी ने मुझे स्वरचित 'उपनयन सर्वस्व' पुस्तक भेंट की। पुस्तक ७६ पृष्ठों कीं है। छोटी होते हुए विचार गाम्भीर्य की दृष्टि से महान् हैं। पुस्तक में यज्ञोपवीत और उपनयन संस्कार के प्रत्येक पहलू पर विशद तथा गम्भीर विचार किया गया है, जो कि तर्क सम्मत तथा प्रमाणों से परिपुष्ट है। मैंने पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा है, और विचार किया है। पुस्तक में यज्ञोपवीत की प्रामाणिकता के लिए जो युक्तियाँ और प्रमाण उपस्थित किये हैं, उनमें किसी और तत्व का समावेश करना शेष नहीं रहा। पुस्तक कई बार मनन करने योग्य है। पुस्तक की भाषा सरल, सरस, परन्तु विचारों की दृष्टि से गूढ है। इस पुस्तक का एक संक्षिप्त परन्तु भावपूर्ण संस्करण तैयार कर विद्यार्थियों, अध्यापकों, शिक्षा निरीक्षकों तथा शिक्षा शास्त्रियों के हाथों में देना चाहिये ताकि भारत की शिक्षा पद्धति 'उपनयन सर्वस्व' में वर्णित शिक्षा उद्देश्यों के अनुसार ढाली जा सके। मैं लेखक श्री आचार्य कृष्ण जी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता हूं कि जिन्होंने ऐसी पुस्तक की रचना की है। उपनयन पर यह तुस्तक अनूठा स्थान रखतो है। एतदर्थ श्री आचार्य जी को शतशः धन्यवाद!

विद्यामार्तण्ड विश्वनाथ विद्यालंकार

भूतपूर्व उपाध्याय वैदिक साहित्य, गुरुकुल कांगड़ी

स्वाध्याय संबंधी समस्त ज्ञातव्य शास्त्रीय वचनों एवं

पूर्ण भण्डार है.

※ ब्रह्ममुनि परिव्राजक

इस पुस्तक का अवश्य स्वाध्याय क
बनाएं.

※ हरिनाम वानप्रस्थी जम्मू तवी

लोगों की स्वाध्याय सम्बन्धी अकर्म
पुस्तक सहायक होगी ।

※ वैद्यनाथ शास्त्री, नई दिल्ली

पुस्तक प्रतिभा सम्पन्न और नूतन
व पौराणिकों सब ही के लिये उपयो

※ विहारी लाल शास्त्री बरेली

यह ग्रन्थ पढ़ने में रुचिकर होने के साथ-साथ अभीष्ट-साध्य सिद्धि की ओर जीवनगति देने वाला भी है.

※ आदित्य मोहन भारद्वाज वेदाचार्य, नजफगढ़

सामग्री की सूष्ठुता तथा रोचकता रचना में विद्यमान है.

※ स्वामी विद्यानन्द विदेह, नई दिल्ली

पुस्तक पढ़ने और मनन करने योग्य है । इसका घर घर में प्रचार हो, ऐसी मेरी कामना है।

※ अमर स्वामी सरस्वती, दिल्ली

पुस्तक का एक-एक पृष्ठ लेखक के गम्भीर चिन्तन का परिचायक है । मनीषी लेखक को इस ग्रन्थरत्न के लिये हम बधाई देते है.

※ राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

पुस्तक अनुसंधान पूर्ण, युक्ति युक्त, सप्रमाण और परमोपयोगी है.

※ सत्यपाल शास्त्री एम. ए., नई दिल्ली

आवरण : वैदिक यन्त्रालय, अजमेर,